जो समाज अपने सिद्धान्तों के ऊपर अपने विशेषाधिकारों को महत्त्व देता है, वह दोनों से हाथ धो बैठता है

जीवन का अंतिम मूल्य केवल जीवित रहने पर नहीं, बल्कि जागरूकता और चिंतन की शक्ति पर निर्भर करता है।

—अरस्तू

"जो लोग अपने सिद्धांतों से ज़्यादा अपने विशेषाधिकारों को महत्त्व देते हैं, वह दोनों से हाथ धो बैठता है" यह कथन **नैतिक मानकों** और **व्यक्तिगत लाभों के बीच संतुलन बनाए रखने के महत्त्व के बारे में एक गहन चेतावनी के रूप में कार्य करता है**। यह संतुलन एक न्यायपूर्ण और कार्यात्मक समाज को बनाए रखने के लिये महत्त्वपूर्ण है। इतिहास से ज्ञात होता है कि जब समुदाय मूलभूत सिद्धांतों पर अल्पकालिक लाभ को प्राथमिकता देते हैं, तो उन्हें अक्सर पतन और अस्थिरता का सामना करना पड़ता है। यह स्थायी स्थिरता और न्याय सुनिश्चित करने के लिये समाजों के लिये अपने सिद्धांतों को बनाए रखने की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

संपूर्ण इतिहास में, समाज को सिद्धांतों के साथ विशेषाधिकारों को संतुलित करने की चुनौती का सामना करना पड़ा है। भारत इस गतिशीलता का एक सम्मोहक उदाहरण प्रस्तुत करता है। **ब्रिटिश औपनिवेशिक काल के दौरान, भारतीय समाज ने अपने सामाजिक-राजनीतिक परिदृश्य** में एक महत्त्वपूर्ण बदलाव का अनुभव किया। ब्रिटिश **ईस्ट इंडिया कंपनी** आरंभ में व्यापार के लिये भारत आई थी, लेकिन धीरे-धीरे, आर्थिक और राजनीतिक नियंत्रण के लालच ने उन्हें अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिये प्रेरित किया, भारतीय लोगों के लिये न्याय और समानता के सिद्धांतों पर अपने विशेषाधिकारों को प्राथमिकता दी।

जैसे-जैसे ब्रिटिश औपनिवेशिक शासकों ने धन और शक्ति को अपने बीच केंद्रित किया और भारतीय अभिजात वर्ग के एक चुनिंदा समूह ने उनके साथ सहयोग किया, सामुदायिक कल्याण के मूलभूत सिद्धांत नष्ट हो गए। स्वशासन की पारंपरिक प्रणालियाँ, जो सामाजिक उत्तरदायित्व और सांप्रदायिक सद्भाव के सिद्धांतों पर आधारित थीं, कमज़ोर हो गईं। अंग्रेजों की शोषणकारी आर्थिक नीतियों और कठोर प्रशासनिक उपायों, जैसे **भारी कराधान** और संसाधनों की निकासी ने भारतीय आबादी के बीच **गरीबी** और **असमानता में वृद्धि की**।

नैतिक शासन के प्रति इस उपेक्षा और स्थानीय आबादी के कल्याण की अपेक्षा औपनिवेशिक विशेषाधिकारों को प्राथमिकता देने से व्यापक असंतोष और प्रतिरोध उत्पन्न हुआ। भारत में औपनिवेशिक काल इस बात का उदाहरण है कि सिद्धांतों पर विशेषाधिकारों को प्राथमिकता देने से सामाजिक अशांति और अंततः सत्ताधारी शक्तियों का नियंत्रण समाप्त हो सकता है। यह एक स्थिर और एकजुट समाज सुनिश्चित करने के लिये न्याय और समानता के सिद्धांतों का पालन करने के महत्त्व को रेखांकित करता है।

ब्रिटिश औपनिवेशिक नियंत्रण से स्वतंत्र होने के लिये भारत का संघर्ष इस बात का प्रमाण है कि विशेषाधिकारों पर सिद्धान्त हावी हो सकते हैं। महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल जैसे लोगों द्वारा संचालित भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन स्वशासन, न्याय और समानता के सिद्धांतों से प्रेरित था। अंग्रेजों के साथ सहयोग से मिलने वाले लाभों और सुख-सुविधाओं के बावजूद, कई भारतीय अभिजात वर्ग ने इसके बजाय राष्ट्रवादी संघर्ष का मार्ग चुना।

स्वतंत्रता के बाद, भारत ने अपने संविधान में निहित सिद्धांतों के आधार पर एक **लोकतांत्रिक गणराज्य के** निर्माण की यात्रा आरंभ की। भारत के संस्थापक सदस्यों ने एक ऐसे राष्ट्र की कल्पना की थी जहाँ **धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक न्याय** और **समानता** आधारशिला होगी। **अस्पृश्यता का उन्मूलन, सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार** और **समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना** सभी इन सिद्धांतों को बनाए रखने के उद्देश्य से की गई थी।

हालाँकि, यह यात्रा चुनौतियों से रहित नहीं रही। **आपातकाल की अवधि (वर्ष 1975-1977)** इस बात का एक स्पष्ट उदाहरण है कि राजनीतिक विशेषाधिकार की खोज किस तरह लोकतांत्रिक सिद्धांतों को कमजोर कर सकती है। **नागरिक स्वतंत्रता का निलंबन, प्रेस की सेंसरशिप** और **राजनीतिक विरोधियों को जेल में डालना लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों के सिद्धांतों** से स्पष्ट रूप से अलग होना दर्शाता है। यह अवधि एक अनुस्मारक के रूप में कार्य करती है कि जब विशेषाधिकारों को सिद्धांतों पर प्राथमिकता दी जाती है, तो वह दोनों से हाथ धो बैठता है।

भारत की राजनीतिक और नौकरशाही व्यवस्था में भ्रष्टाचार एक और ऐसा क्षेत्र है जहाँ विशेषाधिकारों की चाहत सिद्धांतों को कमजोर करती है। **2010 के राष्ट्रमंडल खेल घोटाले** और **2जी स्पेक्ट्रम मामले** इस बात के उल्लेखनीय उदाहरण हैं कि कैसे **व्यक्तिगत और वित्तीय लाभ की चाहत पारदर्शिता और जवाबदेही के सिद्धांतों से** समझौता कर सकती है। इन घोटालों ने न केवल भारत की अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को धूमिल किया बल्कि सरकारी संस्थानों में जनता के विश्वास को भी समाप्त कर दिया।

भारत का तीव्र आर्थिक विकास अक्सर पर्यावरणीय स्थिरता की कीमत पर हुआ है । आर्थिक विशेषाधिकारों की खोज में सतत विकास के सिद्धांत को प्राय: दबा दिया जाता है। औद्योगिक परियोजनाओं, खनन गतिविधियों और शहरी विस्तार ने महत्त्वपूर्ण**पर्यावरणीय गिरावट को जन्म दिया है, जिससे पारिस्थितिकी तंत्र प्रभावित हुआ है** और **स्वदेशी समुदाय विस्थापित हुए हैं।**

नर्मदा **बचाओ आंदोलन (NBA) विकास विशेषाधिकारों** और **पर्यावरण सिद्धांतों** के बीच संघर्ष का एक उदाहरण है । **मेधा पाटकर** जैसे कार्यकर्त्ताओं के नेतृत्त्व में इस आंदोलन ने **नर्मदा नदी** पर बड़े बांधों के निर्माण का विरोध किया , जिससे हजारों लोगों के विस्थापित होने औ**रपारिस्थितिक संतुलन बिगड़ने का खतरा था** । आंदोलन ने **सतत विकास** और **सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर बल दिया** , यह तर्क देते हुए कि ऐसी परियोजनाओं का लाभ मानव विस्थापन और पर्यावरणीय नुकसान की कीमत पर नहीं होना चाहिये। कुछ सफलताओं के बावजूद, आंदोलन पर्यावरणीय सिद्धांतों के साथ आर्थिक विशेषाधिकारों को संतुलित करने के लिये चल रहे संघर्ष को उजागर करता है।

भारतीय **न्यायपालिका को** प्राय: संवैधानिक सिद्धांतों के संरक्षक के रूप में देखा जाता है। हालाँकि,**न्यायिक भ्रष्टाचार** और **राजनीतिक हस्तक्षेप के उदाहरणों ने न्यायिक सत्यनिष्ठा में कमी के बारे में चिंताएँ उत्पन्न की** हैं। जब न्यायिक विशेषाधिकार, जैसे अनुचित प्रभाव और वित्तीय लाभ, निष्पक्षता और न्याय पर हावी हो जाते हैं, तो **विधि के शासन** का सिद्धांत खतरे में पड़ जाता है।

भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ आरोपों और **अयोध्या मामले में विवादास्पद तरीके से निपटारे जैसे हाई-प्रोफाइल मामलों ने** न्यायपालिका की स्वतंत्रता के बारे में विवाद उत्पन्न किया है। ये उदाहरण तात्पर्य हैं कि जब न्यायिक कर्त्ता व्यक्तिगत विशेषाधिकारों को प्राथमिकता देते हैं, तो न्याय और निष्पक्षता के मूलभूत सिद्धांतों से समझौता होता है, जिससे विधिक व्यवस्था में जनता का विश्वास कम होता है।

किसी भी लोकतंत्र को सत्ता पर अंकुश लगाने और बेजुबानों की आवाज़ बनने के लिये स्वतंत्र प्रेस की ज़रूरत होती है। भारत में, मीडिया ने भ्रष्टाचार को उजागर करके, सामाजिक न्याय की वकालत करके और सार्वजनिक वाद को बढ़ावा देकर लोकतांत्रिक सिद्धांतों को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, मीडिया पर मजबूत कॉर्पोरेट और राजनीतिक हितों के बढ़ते प्रभाव के कारण यह कार्य संकट में है।

मीडिया सेंसरशिप **,पत्रकारों का उत्पीड़न** और **पेड न्यूज़ का प्रसार** पत्रकारिता की ईमानदारी पर राजनीतिक और आर्थिक हितों को प्राथमिकता देने की ओर एक बदलाव का संकेत देता है। असहमति जताने वालों पर कार्रवाई और पत्रकारों और कार्यकर्त्ताओं के खिलाफ राजद्रोह कानूनों का इस्तेमाल चिंताजनक रुझान हैं जो दर्शाते हैं कि विशेषाधिकारों की खोज कैसे भाषण की अभिव्यक्ति और लोकतंत्र के सिद्धांतों को समाप्त कर सकती है।

भारत का अनुभव विशेषाधिकारों और सिद्धांतों के बीच संतुलन को दर्शाता है। स्वतंत्रता संग्राम से लेकर समकालीन चुनौतियों तक, देश की प्रगति दर्शाती है कि जब विशेषाधिकार सिद्धांतों पर हावी हो जाते हैं, तो दोनों ही संकट में पड़ जाते हैं। न्याय, समानता, लोकतंत्र और स्थिरता जैसे सिद्धांतों को बनाए रखना दीर्घकालिक सामाजिक कल्याण के लिये महत्त्वपूर्ण है। भारत के इतिहास और समकालीन समाज के विभिन्न उदाहरण सिद्धांतों के प्रति सतर्कता और प्रतिबद्धता की आवश्यकता को उजागर करते हैं। चाहे भ्रष्टाचार का मुकाबला करना हो ,सामाजिक असमानताओं को दूर करना हो, पर्यावरणीय स्थिरता सुनिश्चित करना हो, या न्यायिक और मीडिया की अखंडता की रक्षा करना हो, विशेषाधिकारों के स्थान पर सिद्धांतों पर बल दिया जाना चाहिये। जो लोग अपने सिद्धांतों पर अडिग रहते हैं, भले ही उन्हें अल्पकालिक विशेषाधिकारों की कीमत चुकानी पड़े, वे अपने समाज की स्थायित्व और अखंडता सुनिश्चित करते हैं। इसके विपरीत, जब विशेषाधिकारों को प्राथमिकता दी जाती है, तो विशेषाधिकार और मूलभूत सिद्धांत दोनों ही संकट में पड़ जाते हैं। इस प्रकार, भारत के लिये, किसी भी राष्ट्र की तरह, स्थायी प्रगति और स्थिरता की कुंजी अपने मूल सिद्धांतों को सबसे ऊपर रखने और उन्हें बनाए रखने में निहित है।

फलों से लदा हुआ पेड़ हमेशा झुका रहता है। यदि आप महान बनना चाहते हैं, तो विनम्र और विनीत बनें।

-श्री रामकृष्ण परमहंस

PDF Refernece URL: https://www.drishtiias.com/hindi/printpdf/a-people-that-values-its-privileges-above-its-principles-loses-both